❀ श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः ❀

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेनकथासु यः ।

भागवत-पत्रिका

नोत्पादयेद्यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ।

अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ।

सर्वोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्मा को आनन्द प्रदायक
भक्ति अधोक्षज की अहैतुकी विघ्नशून्य अति मंगलदायक ।।
सब धर्मोंका श्रेष्ठ रीति से पालन करते जीव निरन्तर ।
किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो श्रम व्यर्थ सभी केवल बंधनकर ।।

वर्ष १४ } गौराब्द ४८३ मास—मधुसूदन ११, वार—वासुदेव, रविवार, ३० चैत्र. सम्वत् २०२६, १३ अप्रेल १९६९ { संख्या ११

श्रीत्रिभङ्गीपञ्चक-स्तोत्रम्

(श्रीश्रील रूप गोस्वामिना विरचितम्)

यमलार्जुनभञ्जनमाश्रितरञ्जनमहिगञ्जनघनलास्यभरं
पशुपालपुरन्दरमभिसृतकन्दरमतिसुन्दरमरविन्दकरम् ।
वरगोपवधूजनविरचितपूजनमुरुकूजननंववेणुधरं
स्मरनर्मविचक्षणमखिलविलक्षणतनुलक्षणमतिदक्षतरम् ।। १ ।।

जो यमलार्जुनके भञ्जन करनेवाले, आश्रित जनोंके रञ्जन करनेवाले और कालिय नागका मर्दन करनेवाले हैं, जिन्होंने कालिय नागके ऊपर सुन्दर नृत्य किया है, जो पशुपालन कार्य में अत्यन्त कुशल हैं, गोवर्द्धन पर्वतकी गुफामें जो अभिसार करते हैं, जो अत्यन्त सुन्दर और कमल जैसे हस्तयुक्त हैं, जिन्हें व्रजवनिताऐं अपने यौवनादि धन समर्पण कर आराधना कर रही हैं,

जो मधुर ध्वनियुक्त वंशीको धारण किए हुए हैं, जो कन्दर्पकेलि विषयमें अत्यन्त कुशल हैं, सर्व-सुलक्षण सम्पन्न जिनका श्रीअङ्ग है और जो सभी कार्योंमें ही अत्यन्त निपुण हैं, ऐसे उन श्रीकृष्ण को (मैं प्रणाम करता हूँ) ॥ १ ॥

प्रणताशनिपञ्जरमम्बरपिञ्जरमरिकुञ्जरहरिमिन्दुमुखं
गोमण्डलरक्षिणमनुकृतपक्षिणमतिवक्षिणममितात्मसुखम् ।
गुरुगैरिकमण्डितमनुनयपण्डितमवखण्डितपुरुहूतमखं
व्रजकमलविरोचनमलिकसुरोचनगोरोचनमतिताम्रनखम् ॥ २ ॥

जो प्रणतजनों (शरणागत व्यक्तियों) के अशनिपञ्जर अर्थात् अभय देनेवाले हैं जिनका वस्त्र पीले रंगका है, जो शत्रुरूप हाथियोंके झुण्डके मर्दन करनेवाले सिंह हैं, चन्द्रकी तरह जिनका सुन्दर बदनमण्डल है, जो गौओंके पालन करनेवाले हैं, जो कुतुहलताके कारण शुक शारिकादि पक्षियोंकी कण्ठध्वनिका अनुकरण करते हैं, जो अत्यन्त सरल स्वभाववाले हैं, जिनका लीलानन्द असीम है, जो सुन्दर गैरिक धातुओंद्वारा अलङ्कृत हैं जो प्रणयकोपपरायणा श्रीव्रजेश्वरी श्रीमती राधिकाजी आदि प्रणयिनी नारियों के मान भङ्ग करनेमें अत्यन्त निपुण हैं, जिन्होंने इन्द्र के यज्ञका खण्डन किया है, जो श्रीवृन्दावनरूप कमलके प्रकाश करनेवाले सूर्य स्वरूप हैं, जिनके ललाटमें गोरोचनाद्वारा विरचित उर्द्धवपुण्ड्र विराजित है, जिनके हस्तपदादिके सभी नख सुन्दर ताम्रवर्णयुक्त हैं, ऐसे उन श्रीकृष्ण को (मैं प्रणाम करता हूँ) ॥ २ ॥

उन्मदरतिनायकशाणितशायकविनिधायकचलचिल्लिलतं
उद्धतसङ्कोचनमम्बुजलोचनमघमोचनममरालिनतम् ।
निखिलाधिकगौरवमुज्ज्वलसौरभमतिगौरभपशुपीवुरतं
कोमलपदपल्लवमभ्रमुवल्लभरुचिदुर्लभसविलासगतम् ॥ ३ ॥

मदमत्त कामदेवके लालिमाद्वारा रंजित बाण जैसी भ्रूलता द्वारा जो सुशोभित हैं, जो दुष्ट स्वभाववाले दानवोंका विक्रम नाश करनेवाले हैं, सभी देवता लोग जिनकी पूजा करते हैं, जो सबसे अधिक गौरवशाली और उज्ज्वल सौरभयुक्त हैं, जो सर्वदा गौरवर्णा व्रजरमणियोंद्वारा परिवृत हैं, जिनके पदपल्लव अत्यन्त सुकोमल हैं, ऐरावत हाथी की अपेक्षा जिनकी अत्यन्त सुन्दर गति है, ऐसे उन श्रीकृष्ण को (मैं प्रणाम करता हूँ) ॥ ३ ॥

भुजमुद्धि्नंविशंकटमधिगतशंकटनतकंकटमटवीसु चलं
नवनीपकरम्बितवनरोलम्बितमवलम्बितकलकण्ठकलम् ।
दुर्जनतृणपावकमनुचरशावकनिकरावकमरुणोष्ठदलं
निजविक्रमचर्चितभुजगुरुगर्वितगन्धर्वितदनुजादिबलम् ॥ ४ ॥

जो विशाल स्कन्धवाले हैं, जो भक्तोंके सङ्कटापन्न होने पर उनका पालन करते हैं, जो वनमें भ्रमण करने के लिये अत्यन्त लालायित हैं, जो अभिनव कदम्बमकुसुमाकीर्ण वनके भ्रमर स्वरूप हैं, कोकिलकी तरह जिनकी कण्ठध्वनि है, जो दुर्जनरूप तृणराशि को जलानेवाले अग्निदेव सदृश हैं, जो अपने अनुचर (सखा) गोपबालकोंकी दावाग्नि आदि सभी प्रकारके भयोंसे रक्षा करते हैं, जिनके ओष्ठाधर सुन्दर अरुणवर्णवाले हैं, जो अपनी शक्तिद्वारा महाबल पराक्रम-वाले विशालबाहुयुक्त दानवोंका विनाश करते हैं, ऐसे उन श्रीकृष्ण को (मैं प्रणाम करता हूँ) ॥४॥

श्रुतिरत्नविभूषणरुचिजितपूषणमलिदूषणनयनान्तगतिं
यमुनातटतल्पितपुष्पमनल्पितमदजल्पितदयितारतिम् ।
वन्देमहि वन्दितनन्दममन्दितकुलमन्धितखलकंसमतिं
त्वामिह दामोदर हलधरसोदर हर नो दरमनुबद्धरतिम् ॥ ५ ॥

हे दामोदर ! तुम्हारे कर्णयुगलमें सुशोभित रत्नप्रभा सूर्यकी शोभाको पराजित कर रही है, तुमने चञ्चल नयनोंमें रञ्जित काजलकी शोभाद्वारा भ्रमर शोभाका तिरस्कार कर दिया है, तुम यमुनातीर में रचित पुष्प शय्या पर शयन करते हो, तुम प्रेमोन्मत्त मधुरभाषिणी प्रेयसियोंके साथ आनन्दपूर्वक बिहार करते हो, तुम अपने पिता नन्दमहाराज को वन्दना करते हो, तुमने गोपवंशको उज्ज्वल किया है, तुम अपने भक्तों के प्रति अनुरागयुक्त हो, अतएव हे हलधर बलराम के छोटे भाई ! हम तुम्हारी वन्दना करते हैं। तुम कृपा कर हमारे संसार भय को दूर करो ॥ ५ ॥

॥ इति श्रीत्रिभङ्गीपञ्चक—स्तोत्रं समाप्तम् ॥

भारत और परमार्थ

(गताङ्क संख्या १०, पृष्ठ २०६ से आगे)

आजकल भारतवर्षमें उन्नत कहे जानेवाले व्यक्ति भारतेतर देशों की दुष्प्रवृत्तियोंको ग्रहण करनेमें बाधा नहीं बोध करते। वे लोग इस पुण्य-भूमिकी मर्यादा नष्ट करनेमें दोष नहीं समझते। इसीलिये परमार्थ राज्यके प्रचारक श्रेष्ठ होने के नाते परमदयानिधि श्रीश्रीचैतन्य महाप्रभुने परोपकारितामें दीक्षित होनेके लिए भारतवासियोंको अधिकारी बतलाया है। भारतेतर विदेशी व्यक्ति यदि वास्तविक भारत-वासीकी तरह सम-स्वभाव प्राप्त करें, उनके लिये इस कथनका विस्तार करनेमें कोई बाधा नहीं है। इसलिये 'पारमार्थिक भारत' कहनेका तात्पर्य यह नहीं है कि सङ्कीर्णता अवलम्बनपूर्वक किसी देश-विशेषको ही समझा जाय।

मनोधर्मजीवी और स्थूल शरीरकी उन्नति चाहनेवाले व्यक्ति जिस प्रकारके अर्थशास्त्र में कुशल हैं, उसमें अधिकांश स्थानोंमें पारमार्थिकता के प्रति उनकी पौरुष-क्रिया आदिकी विरोधिता देखी जाती है। 'पारमार्थिक' शब्दसे हमारा केवलमात्र आत्मज्ञानसम्पन्न व्यक्तियोंके स्वभावसे ही तात्पर्य है। ऐसे स्वभावपरायण उन्नत मानव समाजका प्रसंग ही यहाँ आलोचनाका विषय है।

अर्थशास्त्र-निपुण मनोधर्मजीवी षड्रिपुओं का दासत्व करनेवाले व्यक्तियोंमें से कोई कोई विद्या-प्रतिभा आदिकी छलना कर भारतवर्ष के सङ्कीर्ण विचारवाले समाजके व्यक्तियोंके मतको ही जनमत के रूपमें प्रचार करनेकी चेष्टा करते हैं। इस प्रकार वे लोग पारमार्थिकताके प्रति जो विरोधाचरण दिखलाते हैं, उसका समर्थन करनेसे उदार चित्समन्वयवाद का विरोध करना होगा।

अहंग्रहोपासक मायावादी व्यक्ति अपने कुमत को सुदृष्टिसे देखने जाकर जिस मायावादातीत विचारसमूहों को ग्रहण करनेकी वासना प्रकाश करते हैं, उसमें अधिरोहवाद और इन्द्रियज ज्ञान की प्रबलता देखी जाती है। इसमें उन्हें कदापि सफलता न मिलेगी—इस बातकी ध्यानपूर्वक आलोचना करने पर हमारे इस कथनकी यथार्थता उपलब्धि होगी।

भारतेतर प्रदेशोंके साथ विद्वेष करते हुए भारतवासियोंकी मंगलकामनासे जो सभी नवीन मतादिका प्रचलन किया जाता है, उनमें से अधिकांश ही मनःकल्पित और इन्द्रियतर्प में व्याघात पड़नेके कारण उत्पन्न हुए हैं। पार-मार्थिक विचारके अनुसार ये सभी मतादि उपेक्षा

करने योग्य है। पारमार्थिक व्यक्तियोंके विचार और हृदयगत भावमें मत्सरता न होनेके कारण केवल परमार्थका ही वे लोग अनुसन्धान करते हैं। अतएव लौकिक अर्थशास्त्रके विद्वान कहे जानेवाले व्यक्ति पारमार्थिक व्यक्तियोंके साथ प्रतिद्वन्दिता करनेकी चेष्टा करते हैं। ऐसी चेष्टा धृतराष्ट्र, द्वारा लोहेके भीमका आलिङ्गन करने की तरह निष्फल साबित होती है या रावण द्वारा सीताहरण की तरह अत्यन्त नीचताका लक्षण-मात्र है। केवल बहिर्मुख चेष्टाके वशीभूत होने पर जिस विषमय फलका उदय होता है, वह गृहासक्त व्यक्तियोंकी इन्द्रियतृप्तिका परिचय प्रदान करता है। पारमार्थिक विचारके व्यक्ति इन्हें अप्रयोजनीय जानकर उनके साथ युद्ध कर जयलाभ करने की चेष्टा नहीं करते।

हम लोग कई बुद्धिमान व्यक्तियोंके मुखसे यह सुन पाते हैं कि व्यवहारिकता और पारमार्थिकता में बहुत भेद है। वह बात जगतके भेदवादी व्यक्ति ही कहा करते हैं। अतएव अभेद ब्रह्मवादी व्यक्ति ही भेदवाद का अवलम्बन कर 'व्यवहार' और 'परमार्थ' के परस्पर सम्बन्धका विचार करते हैं।

निर्भेद ब्रह्मके माननेवाले मायावादी व्यक्ति मायिक विचारका अवलम्बन कर उसे 'व्यवहार' कहते हैं और इन्द्रियरहित ज्ञेय वस्तुकी बातके द्वारा अपनी इन्द्रियोंका निरोध करना ही 'परमार्थ' समझते हैं। मायावादी लोग 'व्यवहार' से लोकदृष्ट क्रियासमूहों को समझते हैं। मायावादियोंके मतानुसार लोकातीत क्रियाओंमें विचित्रता न रहनेके कारण निष्क्रिय अवस्थामें जीवकी केवल-चिदिन्द्रियोंकी या भगवानकी केवल-चिदिन्द्रियोंकी वृत्तियाँ स्तब्ध रहती हैं। जड़जगतके काठ-पत्थरकी तरह जड़ावस्थामें स्थित रहना ही चेतन-धर्म है—ऐसा वे लोग समझते हैं। किन्तु वास्तवमें ऐसा जड़ साधन केवल-चेतनधर्मका कहाँ तक समर्थन कर सकता है यह विचार करने योग्य बात है। जड़-व्यवहार राहित्यको 'प्रयोजन' समझना क्षणस्थायी चेष्टायुक्त व्यवहारोत्तर भूमिकामें पारमार्थिकता की कल्पना करना मात्र है। ऐसी कल्पना चिद्वैशिष्ट्य पर कुठाराघात करनेवाली है—इसे अधिकांश व्यक्ति स्वीकार नहीं करते। व्यवहार-राज्य लौकिक होने पर भी वह पारमार्थिकता की प्रारम्भिक भूमिका हो सकती है—ऐसा जो लोग विश्वास नहीं करते, उन्हें पारमार्थिक व्यक्ति वैराग्यका दुरुपयोग करनेवाले व्यक्तियोंके रूपमें जानते हैं। प्रापञ्चिक नश्वर वस्तु-विचारके द्वारा नित्य हरिके साथ सम्बन्धयुक्त नित्य वस्तुओंको अपने भोग्य वस्तु समझना असद् वासना मात्र है। उसके द्वारा हमारी सेवा-प्रवृत्ति और शुद्ध चित्त-वृत्ति सत्यकी ओर अग्रसर नहीं हो सकतीं।

काल्पनिक परमार्थ और वास्तविक परमार्थ अधिकांश स्थानोंमें ही भेदभावापन्न हैं। जड़का आदर्श देखकर उसकी नश्वरताको जानकर यदि कोई व्यक्ति केवल-चेतनमय सविशेष राज्यमें जड़ जगतकी तरह विचित्रता-राहित्यकी कल्पना करें और उसे ही 'परमार्थ' समझें, तो यह उसकी निराधार कल्पनामात्र है। केवल-चेतन राज्यमें प्रवेश होने पर वक्ता श्रोता और वक्तृता तीनों ही वस्तुएँ विलुप्त हो जाती हैं-ऐसा वे लोग सोचते हैं। ऐसी बात हो, तो मुक्त-अवस्थामें उनकी सभी बातें मूकता में ही परिणत हो जाती हैं। जो व्यक्ति चिद्वैचित्र्य को नहीं मानते, चिद्-विचित्रता की बातें वे समझ नहीं सकते। उन लोगों का कहना है कि चिद्विचित्रताके विलासादि श्रवण करनेसे पाये नहीं जा सकते और श्रवण-कारीके केवल-चेतन-श्रवणेन्द्रिय द्वारा वे सुने नहीं जा सकते। ऐसी दांभिकता कोरे आध्यक्षिक ज्ञानी ही प्रकाश कर सकते हैं। वे लोग केवल मुखमें वेदोंको मानते हैं। मूर्खतापरायण होकर उसी मूर्खता में आबद्ध रहनेके लिए वे जो सभी उपदेश प्रदान करते हैं, वे अनभिज्ञ जनोचित या अज्ञानद्वारा उत्पन्न विचार-विशेषमात्र हैं।

जो व्यक्ति केवल-चेतन-राज्यमें परमार्थका अनुसन्धान रखते हैं, वे ही केवल-चिच्छक्तिद्वारा पारमार्थिक विचित्रतामें अवस्थित होते हैं। यह चिच्छक्तिके अंशविशेषरूपसे प्रकाशित होती हैं। किन्तु वर्त्तमान समयमें नाना प्रकार के जड़ीय विचारोंमें आबद्ध श्रोताओंको यदि चिन्मय भावना में प्रवेश कराने का यथार्थ प्रयत्न करें, तो श्रोता लोग अनर्थमुक्त होकर चिद्वैचित्र्य में सहज ही प्रवेश कर सकते हैं।

चिद्विचित्रताकी अनुभूतिके द्वारा उनके जड़जगतका इन्द्रियज ज्ञान क्रमशः निवृत्त होकर वे वास्तव सत्यमें स्थित होकर चित्बल प्राप्त करते हैं। इन्द्रियज भाषा प्रापञ्चिक न्याय-अन्याय का ही विचार लेकर उसीमें व्यस्त है। यह प्रत्यक्षवाद का मूर्तिमान-स्वरूप है। इसके द्वारा चित्तमें जड़ विश्लेषण और जड़ानुभूति की जड़ेन्द्रियतत्परता प्रबल होती हैं। चिद्वैचित्र्य की अनुभूति इनसे सम्पूर्ण रूपसे पृथक् है। वह क्रमशः शुद्ध वास्तव सत्यराज्य के शुद्ध ज्ञानकी विचित्रता और विशुद्ध सत्यकी अखिल कल्याण-गुणत्व पर आस्था स्थापित कराती है। जिन्हें ऐसा सौभाग्य प्राप्त हुआ है, वे लोग जड़भोगमय राज्यसे विदा ले चुके हैं। इस अवस्थाको ही पारमार्थिक व्यक्ति स्वरूपबोध कहते हैं। व्यव-हारिक युक्ति चांचल्य इन्द्रियज ज्ञानद्वारा जड़ीय भोगधर्मसे उत्पन्न होता है। वह कालधर्म द्वारा खण्डित हो जाता है, पात्रगत अधिष्टानको वह जड़ात्मकमात्र ज्ञान कराता है। सत्व जगतम

मिश्रित अवस्थामें जिस सत्ताज्ञान की अनुभूति होती है, वह मिश्र है। वह अविमिश्र केवलज्ञान का विषय नहीं है। जड़राज्यमें भ्रमण करनेवाले इन्द्रियज ज्ञान द्वारा परितृप्त तथाकथिक पण्डित लोग परमार्थ का कोई अनुसन्धान नहीं रखते। अतएव वे लोग जड़की अत्यन्त स्तब्धावस्था को निर्विशेष केवल-ज्ञान कहकर अपनी विचारहीनता का परिचय देते हैं। इससे केवल इन्द्रियतर्पणकारी व्यक्तियों का ही समर्थन प्राप्त किया जा सकता है। इस तुच्छ ज्ञानके लिये 'परमार्थ' शब्दका प्रयोग नहीं किया जा सकता।

इन्द्रियज ज्ञानपरायण व्यक्ति परमार्थको भ्रमजात व्यवहार विशेषमात्र समझते हैं। इसलिए वे लोग यथार्थ परमार्थका अनुसन्धान नहीं प्राप्त करते। वे लोग निर्विशिष्ट घोर जड़ताको 'ब्रह्म' आदि शब्द द्वारा समझकर वैकुण्ठ जगत की शुद्ध अनुभूतिसे वञ्चित रह जाते हैं।

पारमार्थिक शास्त्रज्ञाता अभिमानी व्यक्तियों के वचन मूर्ख लोगों के समाजमें आदरणीय हो सकते हैं। किन्तु उनका यथार्थ परमार्थ से कोई सम्बन्ध न रहनेके कारण वे लोग चिद्विलास-वैचित्र्यका कोई भी खबर नहीं रखते। जो व्यक्ति चिद्विलास-वैचित्र्यकी बातें जड़ीय ज्ञानियोंके पास व्यक्त करने की चेष्टा करते हैं, वे लोग विवाहित सम्बन्धसे बिलकुल अपरिचित शिशुके निकट प्राप्तवयस्क की जड़रस-विचित्रता कहनेका अयथा प्रयास करते हैं। यद्यपि उसमें चमत्कारिता मालूम होती है, फिर भी निर्विशेषवादी उसे धारण नहीं कर पाते।

जिस प्रकार काफिरी बालककी लिपिकी सुन्दरता देखकर विस्मय होता है और विश्वास करनेमें विलम्ब होता है, उसी प्रकार जड़बद्ध-अमुक्त-भोगपरायण जीव मायावाद राज्यमें विचरण करते हुए वैकुण्ठ राज्यकी विचित्रताको धारण करनेमें समर्थ नहीं होते।

परमार्थराज्यकी पारमार्थिक भाषाद्वारा जीवकी महानर्थमयी भोग प्रवृत्तिका खण्डन कर अप्राकृत राज्यकी बातें कहनेमें ही यथार्थ श्रेय: है। क्योंकि इन्द्रियज्ञानमें प्रमत्त प्रेय: पन्थी सर्वदा ही अज्ञताके वशीभूत होकर अभिनव नित्य-सत्य को ग्रहण करनेमें पराङ्मुखता प्रकाश करते हैं।

—जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रील सरस्वती ठाकुर

प्रश्नोत्तर

(वैधी—भक्ति)

२५—क्रम सोपान क्या है ?

" क्रम-सोपान ही सर्वोत्तम और निश्चय-अर्थतनक है। पहले धर्म-जीवनमें वर्णाश्रम की निष्ठा होगी; पश्चात् उन्नति क्रमसे वैध भक्तजीवन का अवश्य प्रादुर्भाव होगा और सबसे अन्तमें प्रेमभक्तिके द्वारा जीवनमें सम्पूर्णताका प्रकाश होगा।"

—चै० शि० ११६

२६—वन्यजीवनसे प्रेम मन्दिरमें जानेका क्रम-सोपान क्या है ?

" वन्य-जीवन, सभ्य-जोवन, केवलनैतिक-जीवन, कल्पित-सेश्वर-नैतिक-जीवन, वास्तव-सेश्वर-नैतिक-जीवन, साधन-भक्त जीवन—इन सभी सोपानोंका क्रमोन्नति-विधिद्वारा अतिक्रम कर जीवको प्रेम-सुमन्दिरमें जानेका सौभाग्य प्राप्त होता है।"

—चै० शि० ११३

२७—भक्त और अभक्तोंके व्यवहारिक दुःखमें तारतम्य क्या है ?

' अवैष्णवोंके लिये यह नश्वर जीवन ही सर्वस्व है। वे जो कुछ कष्ट पाते हैं, वह सहज ही बड़ा कठिन है। इस कष्ट को दूर करनेके लिये वे बहुत प्रकार की चेष्टा करके भी कष्टशून्य नहीं हो सकते। + + + वे भक्त लोग ऐहिक जीवन को केवल क्षणिक-पान्थ जीवनके रूपमें जानते हैं। इसलिये शुद्ध चिन्मय सुखके प्रभावसे उनके जीवनके क्षणिक व्यवहारिक दुःख सभी अत्यन्त अनादरके साथ अतिवाहित हो जाते हैं।"

'वैष्णवों का व्यवहारिक दुःख'

स० तो० १०।२

२८—भजनका प्रथमाङ्ग क्या है ? गुरुदेव पहले शिष्यको क्या करेंगे ?

" भजनका प्रथमाङ्ग ही है दशमूल-शिक्षाकी सेवा करना। दशमूल-निर्यास पान कराकर गुरुदेव शिष्यका पञ्च संस्कार करायेंगे। दशमूल को भलिभांति जान लेने पर भजन न करनेसे अनर्थोंकी निवृत्ति न होगी।"

'—दशमूल- निर्यास' स० तो० ८।८

२९—रागमय भक्त-जीवन भी क्या वैध भक्त-जीवनकी तरह एक सोपान विशेष है ?

" नरजीवन एक सोपानमय गठनविशेष है। अन्त्यज जीवन ही सबसे निम्नस्थ सोपान है।

निरीश्वर-नैतिक-जीवन दूसरा सोपान है, सेश्वर नैतिक-जीवन तीसरा सोपान है, वैधभक्त जीवन चौथा सोपान है और राग-उत्तेजित भक्त-जीवन ही सब सोपानोंसे ऊपर वर्त्तमान सर्वश्रेष्ठ अवस्थिति है।"

चै० शि० ३।४

३०—किस प्रकारसे स्वरूपभ्रम दूर होकर स्वरूप ज्ञानका उदय और कृष्णानुशीलनकी प्राप्ति होती है ?

" स्वरूपभ्रम एक ही दिनमें नहीं जाता; अतएव कृष्णानुशीलन करते करते क्रमशः दूर होता है। मैं कृष्णदास हूँ, यह अभिमान ही जीवका स्वरूप-ज्ञान है। इस अभिमानके साथ जो कृष्णानुशीलन होता है, वही यथार्थ कृष्णानुशीलन है। गुरु-कृपासे स्वरूपज्ञान का उदय होता है। शिष्योंका कर्त्तव्य है कि वे लोग विशेष यत्नके साथ आत्मस्वरूपको जानने की चेष्टा करें, नहीं तो प्रथम अनर्थ दूर नहीं होगा।"

—'दशमूल-निर्यास' स० तो० ८।८

३१—किस प्रकार हृदयसे काम-वासना विदूरित होती है ?

" यदि थोड़ेसे परिमाणमें काम हृदयमें रहे, तो दीनतापूर्वक उसकी निन्दा करते हुए उसे स्वीकार करते हुए निष्कपट भावसे भजन करते रहना चाहिए। थोड़े ही दिनोंमें भगवान साधक के हृदयमें बैठकर हृदयकी कामनाओं को दूर करते हुए उसकी प्रीति ग्रहण करेंगे।"

—चै० शि० १।७

३२—भावोदय और प्रेमोदय कैसे होते हैं ?

" साधु-संगके बलसे हरिनामादि का अनुशीलन करते करते भावोदय होता है; क्रमशः प्रेमोदय भी होता है। प्रेम जिस परिमाणमें उदित होता रहता है, उसी परिमाणमें मुक्ति आदि सिद्धियाँ गौण फलके रूपमें उदय होते हैं।"

—'दशमूल-निर्यास' स० तो० ८।८

३३—किस प्रकारसे नामापराध दूर होकर नामभास-अवस्था भी विदूरित होती है ?

" गुरु-कृपासे ही नामाभास-दशा दूर होती है और नामापराधसे परित्राण प्राप्त होता है।"

—चै० शि० ६।४

३४—समस्त—भजन—संकेत का संक्षिप्त-सार क्या है ?

" जितने प्रकारके भी भजन-संकेत हैं, उन सभी संकेतोंमें स्वयं हरिनाम ही संक्षिप्त सार-स्वरूप है।"

—चै० शि० ३।३

३५—नाममें रुचि और ऐकान्तिकी नामाश्रया भक्ति कैसे प्राप्त होती है ?

" केवल मुखसे नामतत्त्व पर विश्वास करनेसे या शास्त्र-पाठ द्वारा जानने पर कोई

कार्य नहीं होता। कार्यमें परिणत होनेपर ही फल प्राप्त होता है। जो व्यक्ति नाम-माहात्म्य जानकर भी नाम नहीं करते, वे निरपराधी नहीं हैं; असत्संग जनित हृदयकी दुर्बलताके कारण उन्हें नाममें रुचि नहीं होती। इसलिए वे लोग नामके निकट अपराधी हैं। सत्संगमें रहकर अपराधका नाश कर सरलताके साथ नामाश्रय ग्रहण करना ही शुभ लक्षण है। अपराध परित्याग करते हुए यत्नपूर्वक नाम ग्रहण करनेपर थोड़े ही दिनोंमें नाम परम सुखकर जान पड़ता है। क्रमशः सुख इतना बढ़ता है कि नाम को और छोड़नेकी इच्छा नहीं होती। तब सहजही नामका ऐकान्त आश्रय हो पड़ता है।"

—'श्रीकृष्णनाम' स० तो० ११।५

३६—किस प्रकार नामापराधका नाश होता है? शुभकर्म या प्रायश्चित्तादि कर्म द्वारा क्या उस अपराधका नाश होता है?

' केवल दैहिक क्रिया करने के लिये जिन विश्रामादिकी आवश्यकता है, उन सबको छोड़ कर और दूसरे सब समय काकूति (अत्यन्त कातरता) के साथ नाम करने पर नामापराध नष्ट होता है। और अन्यान्य शुभ कर्मादि या प्रायश्चित्तादिद्वारा नामापराध नष्ट नहीं होता।"

—'अहं मम भावापराध' ह० चि०

३७—किस प्रकार भजनमें उन्नति होती है?

" नाम ग्रहण करते समय नामका स्वरूपार्थ आदरके साथ अनुशीलन करते हुए कृष्णके निकट क्रन्दन करते हुए प्रार्थना करनी चाहिए। ऐसा करने पर क्रमशः कृष्ण कृपाके द्वारा भजनमें उद्ध्वगति प्राप्त होती है। ऐसा न करने से कर्मी ज्ञानियों की तरह साधन करते करते बहुत जन्म बीत जाते हैं।"

—चै० शि० ६।४

३८—किस प्रकार शुद्धसत्व का उदय होता है?

" शरीरमें मल लगा हुआ है; वह मल दूसरे मल द्वारा दूर नहीं होता। जड़कर्म स्वयं ही मल है, वह किस प्रकार दूसरे मलको साफ करेगा? व्यतिरेक-ज्ञान आग जैसा है, जो मलदूषित सत्ता पर लग जानेसे उस सत्ताका नाश कर देता है। वह किस प्रकार मलका परिष्कार कर सुख दे सकता है? इसलिये गुरु-कृष्ण-वैष्णवोंकी कृपामूल भक्ति द्वारा ही शुद्ध सत्वका उदय होता है। शुद्ध सत्व ही हृदयको उज्ज्वल करता है।"

—चै० शि० २य ख० ७।७

३९—अन्तर्मुख जीवन किनका है? किसे अन्तर्मुख जीवन कहते हैं?

" परमेश्वरको जीवन-सर्वस्व जानकर जो व्यक्ति समस्त विज्ञान, शिल्प, नीति, ईश्वरवाद और चिन्ताको ईश्वर-भक्तिके अधीन कर जीवन यात्रा निर्वाह करते हैं उनका जीवन मायाबद्ध

होने पर भी अन्तर्मुख है। अंतर्मुख जीवनकोही साधन-भक्त जीवन कहा जाता है।"

—चै शि० २य ख० ८, उपसंहार

४०—किस किस साधन द्वारा कौन कौनसे लोक की प्राप्ति होती है? प्रेमातुर भक्त कौन-सा लोक प्राप्त करते हैं?

"जड़-जगतमें ऊपर और नीचे चौदह लोक हैं। कामी गृहस्थ व्यक्ति भुः, भुव, और स्वः, रूप त्रिलोकों मे गमनागमन करते रहते हैं। बृहद्व्रत-ब्रह्मचारी तपो लोक और सत्यपरायण शान्त पुरुष लोग निष्काम कर्मयोग द्वारा महर्लोक, जन लोक, तपोलोक और सत्यलोक तक गमन करते हैं। इन चौदह भुवनोंके सत्यलोकके ऊपरी भाग में ब्रह्माजीका धाम है और उससे भी ऊपर क्षीराब्धिशायी विष्णुका बैकुण्ठ लोक है। सन्यासी परमहंस लोग एवं भगवान विष्णु द्वारा मारे गये असुर लोग विरजाको पारकर अर्थात् चौदह भुवनों का अतिक्रम करते हुये ज्योतिर्मय ब्रह्म-धाममें आत्म-लोप रूप निर्वाण प्राप्त करते हैं। भगवानके परमैश्वर्यप्रिय ज्ञान भक्त, शुद्ध भक्त, प्रेम भक्त, प्रेमपर भक्त और प्रेमातुर भक्त लोग वैकुण्ठ अर्थात् परव्योमात्मक अप्राकृत नारायण धाममें स्थिति प्राप्त करते हैं। व्रजानुगत परम-माधुर्यगत भक्त लोग केवल गोलोक-धाम (कृष्ण लोक) को प्राप्त करते हैं।"

—ब्र० सं० ५।५

४१—वैष्णव साधन किस मार्ग द्वारा साधित होता है?

"जहाँ जिस ओर रागका आधिक्य होता है, उसी ओर ही जीवकी गति होगी। नाव पतवार के जोरसे चलता रहता है। किन्तु जहाँ जलका रागरूप स्रोत उसे आकर्षण करता है, वहाँ स्रोत के वेगके सामने पतवारका जोर नहीं चलता। उसी प्रकार साधक समय समय पर ध्यान, प्रत्याहार और धारणारूप बहुतसे पतवारोंसे मानस-नौका को पार ले जाने की चेष्टा करते हैं। किन्तु विषय रागरूप स्रोत शीघ्र ही उसे विषय सागरमें फेंक देता है। वैष्णव साधन शुद्ध राग-मार्गद्वारा साधित होता है। शुद्ध रागकी सहायता से निश्चित रूपसे साधक तुरन्त ही बैकुण्ठराग प्राप्त करते हैं।"

—प्रे० प्र०

४२—जड़-विषयराग किस प्रकार भगवद्रागरूप में परिणत हो सकता है?

"चित्त चांचल्य जब भक्तिसाधन की प्रधान बाधा है, तब भक्तिसाधनके समयमें सभी विषयों को भगवत्-सम्बन्धी बनाकर विषय रागको भगवत् रागरूपमें परिणत करना पड़ेगा। ऐसा होने पर रागका आश्रय ग्रहण कर चित्त शीघ्र ही भगवत्भक्तितत्त्वमें स्थिर हो जाता है।"

—'लौल्य' स० स० तो० १०।११

४३—कृष्ण-कृपा प्राप्त करनेका एकमात्र कारण क्या है ?

" सरलतापूर्वक भजन ही कृष्ण-प्रसाद प्राप्त करने का केवल एकमात्र उपाय है।"

—'जनसंग' स० तो० १०।११

४४—साधनभक्तिमें कितने सोपान हैं ? प्रेमका द्वार क्या है ?

" साधन भक्तिमें श्रद्धा, निष्ठा, रुचि और आसक्ति–ये चार सोपान हैं। इन चार सोपानों का अतिक्रम कर प्रेमके द्वारस्वरूप भावके सोपानमें अवस्थिति होती है।"

—'नियमाग्रह' स० तो० १०।२०

४५—साधन भक्तकी सर्वोच्चता किस प्रकार प्रमाणित होती है ? कौनने यथार्थ रूपसे भगवानकी कृपा प्राप्त की है ?

" वर्णाश्रम-धर्मका पालन करनेसे जीवन-यात्राका निर्वाह होता है। योगादि मनकी उन्नति के साधन स्वरूप हैं। किन्तु साधन भक्तिमें जीवकी आत्मोन्नति होती है। साधक यद्यपि पक्का कृषक, कुशल व्यापारी या चतुर योद्धा न बन सके, तथापि उनके अधिकार क्रमसे वे उन्नत मानव-जीवनके कौशलमें परिपक्व हैं। यद्यपि एक मंत्री तोपके दागनेमें विशेष सामार्थ्यवान् न हो सके, तथापि सभी योद्धाओंके मस्तक रूपसे वे ही सभी युद्धादियोंकी व्यवस्था करते हैं। उसी प्रकार साधक भक्तकी सर्वत्र-उच्चता को जो देख पाते हैं, वे यथार्थ ही में बुद्धिमान हैं। उन्होंने भगवत् कृपा अवश्य प्राप्त की है।"

चै० शि० १।६

४६—शास्त्रकर्त्ता ऋषियोंके साथ गोस्वामियोंके सिद्धान्त पारमार्थिक व्यक्तियोंके ग्रहणीय क्यों हैं?

"ऋषि लोगोंने अपने अपने शास्त्रोंमें भगवद-नुशीलनके जो बहुत प्रकारके उपाय लिखे हैं, वे सभी ही वैध-अङ्ग हैं। किन्तु उनमेंसे हरिभक्तिविलासमें बहुतोंका उद्धरण किया गया है और श्रील रूप गोस्वामीपादने इन सभी अङ्गोंमें से प्रसिद्ध प्रसिद्ध चौसठ उपायों का प्रदर्शन कर इन्हें अपने प्रसिद्ध भक्तिरसामृतसिन्धु ग्रन्थमें सन्निवेशित किया है।"

—त० सू० ३५ वां सू०

—जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

सन्दर्भ–सार

(श्रीकृष्ण—सन्दर्भ–३१)

श्रीवृन्दावनमें श्रीव्रजगोपियाँ श्रीकृष्णकी स्वरूप शक्तिके प्रादुर्भावरूपा हैं। श्रीब्रह्मसंहितामें कहा गया है—

आनन्दचिन्मयरस-प्रतिभाविताभि-
स्ताभिर्य एव निजरूपतया कलाभिः।
गोलोक एव निवसत्यखिलात्मभूतो
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥

"जो आनन्दचिन्मयरस द्वारा प्रतिभाविता हैं, जो निजरूपतायुक्त होनेके कारण उनकी कला हैं, उनके साथ निखिल जगतके आत्मा स्वरूप जो भगवान अपने नित्य गोलोकधाममें वास करते हैं, ऐसे उन आदिपुरुष श्रीगोविन्दका मैं (ब्रह्मा) भजन करता हूँ।" यहाँ 'ताभिः' शब्द द्वारा गोपियोंको जानना चाहिये। क्योंकि इसी ग्रन्थमें पहले मंत्र-वर्णनामें 'गोपी' शब्द का प्रयोग है—

कामकृष्णाय गोविन्द ङे गोपीजन इत्यपि ।
वल्लभाय प्रिया वह्नेर्मन्त्रं ते दास्यति प्रियम् ।।

(श्रीब्रह्म-संहिता ५।४२)

कलाका अर्थ शक्ति और निजरूपताका अर्थ स्व-स्वरूपता है। पूर्व कथनके अनुसार इस शक्तिका उत्कर्ष है। अतएव परम पूर्ण प्रादुर्भाववती इन सभी गोपियोंका लक्ष्मित्व प्रकाश पा रहा है। यह श्रीब्रह्मसंहितामें ही वर्णित है–'लक्ष्मी सहस्र-शत संभ्रम ससेव्यमानं' अर्थात् 'असंख्य लक्ष्मियाँ संभ्रम (गौरव) के साथ सर्वदा जिनकी (गोविन्द की) सेवा कर रही हैं। और यह भी कहा गया है-'श्रियः कान्ताः कान्तः परमपुरुषः' अर्थात् कान्तागण श्री(लक्ष्मी)हैं और परमपुरुष कान्त हैं।

स्वायम्भुवागममें भी 'श्री-भू–लीला' शब्द द्वारा श्रीकृष्ण प्रेयसीत्रयका उल्लेख है। श्रीभगवत् प्रेयसियोंमें श्री–भू-लीला-इन तीनों का श्रेष्ठत्व है। परव्योममें वर्त्तमान इन तीनों शक्तियोंसे द्वारकापुरीमें स्थित श्री–भू–लीला शक्तियों का श्रेष्ठत्व है। इन तीनोंसे श्रीवृन्दावन की श्री-भू–लीला रूपा प्रेयसियों (गोपियों) का श्रेष्ठत्व है। ये गोपियाँ ही श्रीवृन्दावनकी लक्ष्मियाँ हैं। इनके लक्ष्मीत्वकी बात स्मरण करके ही श्रीशुकदेवजी ने श्रीमद्भागवतके १०।३३।७ में गोपियोंको 'कृष्णवधू' कहा है। जिस प्रकार श्रीलक्ष्मी देवी श्रीनारायणजीकी स्वरूप शक्ति होनेके कारण उनके साथ नित्य दाम्पत्ययुक्ता हैं, उसी प्रकार गोपियाँ श्रीकृष्णकी

नित्य स्वरूपशक्ति होनेके कारण उनका श्रीकृष्ण के साथ नित्य दाम्पत्य है। वे लक्ष्मियोंकी तरह परम पतिव्रता-शिरोमणि हैं।

तापनी-श्रुतिमें दशाक्षर-मन्त्रकी व्याख्यामें कहा गया है—"गोपीजनविद्याकलाः" अर्थात् गोपीजन आ-सम्यक् प्रेमरूपा जो विद्या उसकी कला-वृत्तिरूपा हैं। गोपीजन शब्दका अर्थ कर 'वल्लभ' शब्दका अर्थ कर रहे हैं—गोपीजन श्रीकृष्ण की स्वरूपशक्ति होनेके कारण वे उनके प्रेरक हैं या विविध क्रीड़ाओंके प्रवर्त्तक हैं। अतएव प्रेरक शब्द वल्लभ शब्दके साथ एकार्थवाचक है। श्रीकृष्ण उनके वल्लभ हैं—यह बात तापनी-श्रुतिमें दुर्वासाके वचनों द्वारा जाना जाता है-'वे तुम्हारे स्वामी हैं।'

गोपियाँ यदि श्रीकृष्णकी स्वरूपशक्ति हैं, तो उनमें से किसी किसीने पूर्वजन्मोंमें साधनानुष्ठान किया था—ऐसा सुना जाता है। इसका क्या समाधान है? उत्तर यही है कि साधकचरी गोपियोंने ही साधनानुष्ठान किया था। स्वरूप शक्ति स्वरूपा श्रीराधा-चन्द्रावली आदि नित्य सिद्धा हैं। उनमें साधन-प्रवृत्ति किसी भी प्रकार से सम्भवपर नहीं है।

ये गोपियाँ श्रीकृष्णकी स्वरूपशक्ति होनेके कारण श्रीरास-प्रसङ्गके सम्बन्धमें श्रीशुकदेवजी ने कहा है—

ताभिर्विधूतशोकाभिर्भगवानच्युतो वृतः।
व्यरोचताधिक तात पुरुषः शक्तिभिर्यथा॥

(भा० १०।३२।१०)

अर्थात् "हे वत्स परीक्षित्! पुरुष (परमात्मा) ऐश्वर्यादिमयी स्वरूप शक्तियों द्वारा परिवृत होकर जिस प्रकार शोभायमान होते हैं, उसी प्रकार भगवान श्रीकृष्ण भी उन विगतशोका श्रीकृष्ण-दर्शन द्वारा परमानन्दिता) गोपियोंके द्वारा परिवृत होकर उससे भी अधिक शोभायमान हुए थे।"

यहाँ यह बतलाया गया है कि भगवान एक-मात्र अपनी स्वरूप शक्ति द्वारा प्रकाशमान हैं; अतएव इन सभी शक्तियों द्वारा वे सम्पूर्णरूपसे प्रकाश पाते हैं। स्वरूप शक्तिरूपा गोपियाँ-जिनके संसर्गमें श्रीकृष्णका श्रीकृष्णत्व सम्यक् अभिव्यक्त होता है, उनके द्वारा परिवृत्त होकर रासमण्डलमें वे सम्यक् शोभा प्राप्त होते हैं। दूसरे श्लोकमें कहा गया है—

गोप्यो लब्ध्वाच्युतं कान्तं श्रिय एकान्तवल्लभम्।
गृहीतकण्ठ्यस्तदोर्भ्यां गायन्त्यस्तं विजह्रिरे॥

(भा० १०।३३।१४)

"दूसरी दूसरी गोपियों लक्ष्मीके अत्यन्त प्रिय श्रीकृष्णको पतिरूपसे प्राप्त कर और उनके द्वारा आलिङ्गित होकर कृष्ण-कीर्त्तन करती हुई विहार करने लगीं।"

ह्लादिनीकी सारवृत्तिविशेष प्रेमरसके सार-विशेषकी प्रधानताके कारण गोपियोंका माहात्म्य अधिक है। यह ब्रह्म-संहिताके "आनन्द-चिन्मय-रस प्रतिभाविता" वचनमें कहा गया है। आनन्द चिन्मय-रस अर्थात् प्रेमरसविशेष, उसके द्वारा प्रतिभाविता। अतएव प्रेमरस-निर्यासका प्रचुर प्रकाश होनेके कारण भगवान श्रीकृष्णमें भी परमोल्लास प्रकटित होता है और उनके साथ रमणेच्छा भी उदित होती है। अर्थात् महाभाव-वती श्रीव्रजसुन्दरियोंके भावमाधुर्यका दर्शन कर स्वरूप-सुख द्वारा परिपूर्ण श्रीकृष्ण उनके साथ रमणाभिलाषी हुए थे।

यह भागवतके १०।२९।१ श्लोकमें वर्णित है—

भगवानपि ता रात्रीः शारदोत्फुल्लमल्लिका।
वीक्ष्य रन्तुं मनश्चक्रे योगमायामुपाश्रितः॥

अर्थात् "भगवान् श्रीकृष्णने भी उन शरद् कालीन प्रस्फुटित मल्लिका पुष्पों द्वारा विभूषिता रात्रियोंको देखकर योगमायाकी सहायतासे मन ही मन रमण करनेकी इच्छा प्रकट की।"

योगमाया दुर्घट-सम्पादिका स्वरूप शक्ति हैं। उन उन लीलाओंका सौन्दर्य प्रकट करनेके लिये उन्होंने उसका समाश्रय ग्रहण किया-उसे प्रवर्तित किया। अर्थात् व्रजरामा गोपियोंके साथ अपने रमणकार्य का सम्यक् प्रकारसे सम्पादन करनेके लिए उन्होंने योगमायाको नियुक्त किया था। ये शक्ति अघटन कार्यको भी कर सकती हैं और अपने वांछित कार्यमें कोई बाधा उपस्थित नहीं होगी और कार्यका सुन्दर रूपसे निर्वाह होगा—ऐसा सोचकर कर ही श्रीकृष्णने ऐसा किया।

भविष्य पुराणके उत्तर खण्डमें मल्ल-द्वादशी प्रसङ्गमें श्रीकृष्ण-युधिष्ठिर संवादमें गोपियोंकी नामावली वर्णित है। स्कन्द-पुराणके प्रह्लाद-संहितामें द्वारका-माहात्म्यके मायावसर प्रस्तावमें ललिता, श्यामला, धन्या, विशाखा, राधा, शैब्या, पद्मा और भद्रा-इन आठ गोपियोंका नामोल्लेख है। 'बहुतसे शतकोटि वनिताओंके सङ्गमें" आदि आगम वाक्योंमें गोपियोंका नाम सुना जाता है। वनिता कहनेसे अनुरागवती रमणीको समझना चाहिये। श्रीगोपियोंमें अनुरागकी पराकाष्ठा होनेके कारण वनिता शब्दद्वारा गोपियोंको ग्रहण किया गया है। गोपियोंमें प्रत्येक ही परम मधुर प्रेमवती और लक्ष्मीजीसे भी रूप, गुण और प्रेम में परमोत्कर्षवती हैं। इसका प्रमाण श्रीकृष्णकी निखिल-लीलाकी मुकुटमणि रासलीला ही है। गोपियाँ संख्यामें भी बहुतसे शतकोटि हैं। इससे यह जाना जाता है कि ये श्रीकृष्णकी महाशक्तियाँ हैं। साधारण शक्तिमें ऐसा श्रीकृष्ण-वशीकरण सामर्थ्य और विपुल रूपसे लीला करना संभव नहीं है।

परम-मधुर प्रेमवृत्तिमयी गोपियों में भी श्रीराधिकाजी उस परम-मधुर प्रेमवृत्तिकी सारांश का आधिक्य परिपूर्णा हैं। अर्थात् प्रेमकी परा-

काष्ठारूप मादनाख्य—महाभाव एकमात्र श्रीराधिकाजीमें ही वर्त्तमान है। परम प्रेमोत्कर्ष की पराकाष्ठा होनेके कारण ऐश्वर्यादिरूपा अन्यान्य सारी शक्तियाँ उनका अनुगमन करती हैं। अतएव श्रीवृन्दावनमें श्रीराधिकाजीका ही स्वयं-लक्ष्मीत्व है। वे सर्वशक्ति वरीयसी और सर्वाश्रय-स्वरूपा हैं। इसलिए वे स्वयं-लक्ष्मी हैं। उनमें प्रेमाधिक्य होनेके कारण सारी व्रज-सुन्दरियोंसे उनकी श्रेष्ठता स्वतः सिद्ध है। दूसरी दूसरी प्रेयसियोंके रहने पर भी श्रीराधिकाजी का मुख्यत्व दिखलानेके लिये वृन्दावनाधिकारिणी रूपसे उनका नाम लिया है। पद्मपुराणके कार्त्तिक माहात्म्यमें शौनक-नारद-संवादमें कहा गया है—

वृन्दावनाधिपत्यञ्च दत्तं तस्मै प्रत्युष्यता।
कृष्णेनान्यत्र देवी तु राधा वृन्दावन-वने॥

अर्थात् "अच्युत भगवान श्रीकृष्णने उन्हें वृन्दावनाधिपत्य प्रदान किया है। अन्यत्र वे देवी हैं और वृन्दावन-वनमें वे राधिकाजी हैं।" अन्यत्र साधारण (मायिक) जगतमें देवी ही अधिकारिणी हैं और वृन्दावन नामक वनमें श्रीराधिकाजी ही अधीश्वरी हैं—यही जानना चाहिये। स्कन्द पुराणमें कहा गया है—

वाराणस्यां विशालाक्षी विमला पुरुषोत्तमे।
रुक्मिणी द्वारवत्याञ्च राधा वृन्दावने वने॥

अर्थात् वाराणसी (बनारस) में विशालाक्षी हैं, पुरुषोत्तममें विमलादेवी हैं, द्वारावतीमें रुक्मिणीजी और वृन्दावन-वनमें राधिकाजी हैं।" इसी प्रकारके श्लोक मत्स्य पुराणमें भी देखे जाते हैं। इस श्लोकमें मायाधिष्ठात्री श्रीदुर्गाजीके साथ श्रीलक्ष्मी-सीता-रुक्मिणी और राधिकाजीका एक साथ जो उल्लेख किया गया है, उसके द्वारा यह नहीं समझना चाहिये कि ये सभी एक समान हैं। श्रीदुर्गाजी बहिरङ्गा शक्ति हैं और श्रीलक्ष्मीजी आदि अन्तरङ्गा शक्ति हैं। शक्तित्वमात्रके साधारण्यके कारण अर्थात् ये सभी भगवच्छक्ति होनेके कारण इन सभीका एक साथ उल्लेख किया गया है। दुर्गादेवी से श्रीलक्ष्मीजीका विशेषत्वकी तरह श्रीसीताजी, श्रीरुक्मिणीजी और श्रीराधिकाजीका जानना चाहिये। श्रीराम-तापनीमें श्रीसीताजी एवं श्रीगोपाल-तापनीमें श्रीरुक्मिणीजी और श्रीराधिकाजीका स्वरूप-भूतत्व वर्णित है। दूसरे ग्रन्थोंमें भी इनके स्वरूप शक्तित्वके बारेमें कहा गया है। श्रीराधाका स्वरूपभूतत्व यामलमें इस प्रकार वर्णन किया गया है—

भुजद्वययुतः कृष्णो न कदाचिच्चतुर्भुजः।
गोप्यैकया युतस्तत्र परिक्रीड़ति सर्वदा।

स्वयंरूप श्रीकृष्ण द्विभुजयुक्त हैं, कदापि चतुर्भुजयुक्त नहीं; वे एक गोपी (श्रीराधिकाजी) के साथ मिलित होकर क्रीड़ा करते रहते हैं।

यहाँ श्रीवृन्दावनमें श्रीकृष्ण श्रीराधाजीके साथ सर्वदा क्रीड़ा करते हैं— इस प्रमाणमें परस्परके अव्यभिचारके कारण श्रीमती राधिकाजीका स्वरूप शक्तित्व निश्चित हुआ है। दूसरी बहुतसी गोपियोंके रहने पर भी वे एक गोपीके साथ सर्वदा क्रीड़ा करते हैं, यह बात श्रीराधिकाजी का परम मुख्यत्व बतला रही है। बृहद्गौतमीय तन्त्र में श्रीबलदेवजीके प्रति श्रीकृष्ण कहते हैं— "मैं निश्चय ही सत्त्व, तत्त्व, परत्व यह त्रितत्व स्वरूप हूँ। मेरी वल्लभा वे राधिकाजी भी त्रितत्व रूपिणी हैं। सात्विक रूपसे अवस्थानपूर्वक पूर्ण चित्पर ब्रह्मरूप मैं ब्रह्मा द्वारा सम्यक प्रार्थित होकर युग युगमें आविर्भूत होता हूँ। श्रीराधा और तुम्हारे साथ आविर्भूत होकर मैं देवशत्रु असुरोंका विनाश करता हूं।" सत्त्व-कार्यत्व, तत्त्वकारणत्व और इन दोनों से श्रेष्ठत्व है परत्व। श्रीराधिकाजी स्वरूपशक्ति होनेके कारण इसी तंत्रमें इसके पहले भी कहा गया है--

देवी कृष्णमयी प्रोक्ता राधिका परदेवता।
सर्वलक्ष्मीमयी सर्वकान्तिः सम्मोहिनी परा॥

अर्थात् श्रीराधिकाजी कृष्णमयी हैं और अत्यन्त तेजस्विनी होनेके कारण देवी तथा परदेवता हैं। वे सर्वलक्ष्मीमयी, सर्वकान्तिमती, सर्वसंमोहिनी और परा (श्रेष्ठा) हैं। ऋक्परिशिष्ट श्रुतिमें भी कहा गया है— "राधा माधवो देवो माधवेनैव राधिका। विभ्राजन्ते जनेष्वा।" अर्थात् निजजन समूहमें श्रीराधाके द्वारा माधवदेव (क्रीड़ाशील या द्युतिमान) हैं; माधवके द्वारा राधिका सब प्रकारसे प्रकाशवती हो रही हैं।

"जन्माद्यस्य" श्लोक में श्रीकृष्ण-पक्षके लिए जो सभी व्याख्या की गई है, वह श्रीराधिकाजी के लिए भी की जा सकती है—

"जन्माद्यस्य यतः अन्वयादितरतश्च"— अपनी परमानन्द शक्तिस्वरूपा राधिकाजीका सर्वदा अनुगमन करते हैं—आसक्त होते हैं। अतएव श्रीकृष्ण अन्वय हैं। श्रीकृष्णकी सर्वदा इतरा–द्वितीया श्रीराधिकाजी हैं। जिस अन्वय और इतरसे आद्य या आदि इसका जन्म है अर्थात् जिन दोनों के द्वारा ही आदिरस-विद्याका जन्म है, (उन दोनोंका ध्यान करता हूँ।); अतएव उन दोनों की (श्री राधाकृष्णकी) अद्भुत विलास-माधुरी-राशि को प्रकाश कर रहे हैं जो उन उन विलासोंमें अभिज्ञ-कुशल और जो रमणी-रत्न (स्वेन राजते इति स्वराट्) तथाविध (विलास-कुशल) स्वरूप सेविराजमान हैं— विलास करते हैं; अतएव वे स्वराट् हैं। इसलिए सब प्रकारसे आश्चर्य रूपसे उन दोनोंके वर्णन करनेमें उनकी कृपा ही मेरे लिए एकमात्र अवलम्बन है। इसलिए कहा गया है— आदिकविने (सबसे पहले उनके लीला-वर्णन आरम्भकारी श्रीवेदव्यासने) मुझे अन्तःकरण द्वारा ही ब्रह्म-

लीला - प्रतिपादक - शब्दब्रह्म जिन्होंने विस्तार किया था अर्थात् जिन्होंने आरम्भ करनेके काल-में ही एकसाथ श्रीमद्भागवतको मेरे हृदयमें प्रकाश किया है, (उन दोनोंका ध्यान करता हूँ।)— यह प्रथम स्कन्धके सप्तम अध्यायमें ('भक्तियोगेन'' आदि श्लोकसे ''चक्रे सात्वत-संहिता ' श्लोक तक) वर्णन किया गया है।

''मुह्यन्ति यत् सूरयः''— यत्–जिस राधाके विषयमें सुर-शेषादि मोह प्राप्त होते हैं अर्थात् स्वरूप सौन्दर्यादि गुण-समूह द्वारा अत्यद्भुता इन्हें—निश्चय रूपसे कहना प्रारम्भ कर निश्चय करनेमें समर्थ नहीं होते। इस प्रकारकी आश्चर्य-मयी वे यदि कृपा न करें, तो श्रीकृष्णकी कृपाप्राप्त मेरी भी ''गोपियोंने श्रीकृष्णके पदचिह्न मिश्रित पदाङ्कोंको देखकर दुःखके साथ कहने लगीं,'' (भा० १०।३०।२२) आदि श्लोकों द्वारा उनको (श्रीराधिकाजी) की थोड़ी बहुत लीला-दिका वर्णन-साहस-सिद्धिकी संभावना नहीं है।

इन दोनोंका आश्चर्यरूपत्व इसमें वर्णित है— ''तेजोवारिमृदां यथा विनिमयो''—तेज् (आग), वारि (जल) और मृत्तिका (मिट्टी)— इन सभी वस्तुओंका जिस प्रकारसे विनिमय-स्वभाव विपर्यय होता है, उस प्रकार जो श्रीकृष्ण विरा-जमान हैं। वह विनिमय इस प्रकार है-तेज पदार्थ-चन्द्र आदि जिनके (श्रीकृष्ण के) नखोंकी कान्तिद्वारा वारिमृत्तिकाके निस्तेजत्व धर्म प्राप्त होते हैं; वारि-नद्यादि, जिनके संसर्गसे सम्बन्धयुक्त वंशी-वाद्यादिके द्वारा अग्नि आदि तेज पदार्थोंकी ऊर्द्ध्वगमनशीलता एवं पत्थ-रादि मृत्पदार्थों की तरह स्तम्भ भावताको प्राप्त होती है। मृत् पदार्थ (पत्थरादि) जिनके प्रकाशमान कान्ति - समूह द्वारा तेज पदार्थकी उज्ज्वलता और वंशी-वाद्यादिके द्वारा वारिवत् द्रवता प्राप्त होते हैं (उन श्रीकृष्णकी आश्चर्य-रूपताके बारे में क्या सन्देह रह सकता है?)— ये सभी बातें श्रीकृष्णके लीलादि वर्णन-प्रसङ्गमें प्रसिद्ध हैं।

श्रीकृष्णकी आश्चर्यरूपता वर्णन कर श्रीराधि-काजीकी आश्चर्यरूपता वर्णन कर रहे हैं— 'यत्र त्रिसर्गो मृषा'' जिन श्रीराधिकाजीकी उपस्थितिमें, त्रिसर्ग-श्री-भू-लीला-इन तीनों शक्तियोंका प्रादुर्भाव, या द्वारका-मथुरा-वृन्दावन इन तीनों स्थानोंके शक्तिवर्गत्रयका प्रादुर्भाव अथवा श्रीवृन्दावन में ही रस-व्यवहारसे सुहृद् उदासीन और प्रतिपक्ष नायिकारूप त्रिविध भेद-प्राप्त सभी व्रजदेवियोंका प्रादुर्भाव मृषा-मिथ्या अर्थात् सौन्दर्यादि गुणरूपत्ति द्वारा ये शक्ति-वर्ग या प्रेयसी-वर्ग श्रीकृष्णका प्रीति-विधान नहीं कर पाते। अर्थात् एकमात्र श्रीराधिकाजीके द्वारा ही श्रीकृष्णके सर्वाभीष्ट पूर्ण होते हैं। उनका ध्यान करता हूँ।

एकवचनान्त क्लीबलिङ्ग 'तद्' शब्दके द्वारा किस प्रकार श्रीराधाकृष्णको समझा जाय?

उत्तर यही है कि परमशक्ति और शक्तिमानरूपसे परस्पर अभिन्न होने के कारण या महाभावावस्थामें परस्पर अभिन्नता-प्राप्त श्रीराधाकृष्णका एकत्व कहने के लिए एकवचनान्त 'तद्' शब्दका प्रयोग किया है। अतएव साधारण भावसे (स्त्री या पुरुष भाव से नहीं) निर्देश होनेके कारण यह शब्द क्लीबलिङ्ग हुआ है।

"धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकं"— अपने लीलाप्रभावसे अपने लीलाप्रतिबन्धक जरती आदि और प्रतिपक्ष-नायिकाओंका कुहक-माया सर्वदा जिन दोनों द्वारा परास्त हुई है।

"सत्यं परं धीमहि"—ऐसे सत्य-ऐसे रूपसे नित्यसिद्ध या परस्पर विलासादि द्वारा आनन्दराशि-दान करनेके लिए जो कृत-प्रतिज्ञ हैं; अतएव पर-दूसरे कोई स्थानमें अदृष्ट (जो देखे नहीं जाते, ऐसे) गुणलीलादि विलास द्वारा सारे जगतको विस्मय प्रदान करनेके कारण जो सर्वोत्कृष्ट हैं, उन श्रीराधा माधवका मैं ध्यान करता हूँ।

इस व्याख्या का सार-मर्म इस प्रकार है—

श्रीराधाजी श्रीकृष्णकी परमानन्द शक्तिस्वरूपा हैं। श्रीराधाकृष्ण एकात्मा होने पर भी विलासके लिए देह-भेद स्वीकार किये हुए हैं। इसलिए श्रीराधिकाजी श्रीकृष्णकी द्वितीय स्वरूप रूपा हैं। श्रीकृष्ण सर्वदा उनके प्रति अनुरक्त हैं। इन दोनोंसे आदिरस (शृंगार रस) उत्पन्न हुआ है। वे दोनों आदिरसके विविध विलासोंमें निपुण हैं। उनकी कृपाके बिना उनकी लीलाका कोई वर्णन नहीं कर सकता। वे कृपा-परतन्त्र होकर श्रीवेदव्यासजीके हृदय में उनकी लीलापूर्ण श्रीमद्भागवतको प्रकाश किये हैं। श्रीमद्भागवत हृदयमें प्रकाश करने पर भी श्रीराधिकाजीकी विशेष कृपाके बिना उनका विषय कोई भी वर्णन नहीं कर सकता। क्योंकि इस विषयके वर्णन में प्रवृत्त होकर शेषादि भी मोह-प्राप्त होते हैं। उन श्रीमती राधिकाजी ने श्रीवेदव्यासपर विशेष कृपा की थी; अतएव वे रासप्रसङ्गमें उनकी (राधाजीकी) लीलाओंका वर्णन करने में समर्थ हुए। श्रीराधामाधवका ऐसा अनिर्वचनीय आश्चर्य स्वरूप है कि उनके सङ्गसे तेज वारि-मृत्तिका आदि पदार्थों में धर्म-विपर्यय होने लगता है। अर्थात् उनकी अंग कान्तिसे ज्योतियुक्त वस्तुएं प्रभाहीन एवं तेजविहीन वस्तुएं ज्योतियुक्त होती हैं। वंशीकी ध्वनिसे जल ऊपर को उठता है और पत्थरादि गलने लगते हैं। उनके संग प्रभावसे जिस प्रकारसे अचेतन वस्तुएं धर्म विपर्ययको प्राप्त होती हैं, उसी प्रकार अपना (राधाकृष्णका) भी धर्मविपर्यय होता है। नायक (श्रीकृष्ण) नायिका (श्रीराधिकाजी) का धर्म और नायिका (श्रीराधिकाजी) नायक (श्रीकृष्ण)का धर्म प्राप्त करती हैं। श्रीकृष्ण अकेले श्रीराधिकाजी द्वारा सभी नायिकागत रसास्वादन करते हैं। वे (श्रीराधाकृष्ण) अपनी शक्ति योगमायाके प्रभावसे(परकीया भावादिके कारण) लीलाके विघ्नकारी भावोंको दूर कर स्वच्छन्द

होकर परमानन्दता के साथ विहार कर रहे हैं। इस प्रकारके विचित्र विहारमें परस्परको अपार आनन्ददान करनेके लिये कृतसंकल्प होकर उसका साधन कर रहे हैं। वे दोनों महाभावके प्रभावसे 'अभेदभावापन्न' हो रहे हैं। वे श्रीराधामाधव ही परम रसिक भक्तोंके एकमात्र आराध्य हैं। श्रीवेदव्यासजी अपने अन्तरङ्ग शिष्यानुशिष्य श्रीशुकदेवजी आदिके साथ ऐसे श्रीराधामाधव का ध्यान कर रहे हैं। अतएव श्रीवृन्दावन भूमिमें श्रीराधिकाजीके साथ विराजमान परमाद्भुत प्रकाशयुक्त श्रीकृष्ण ही स्वयं सर्वकारण-कारण और परतत्त्व हैं।

श्रीकृष्ण—सन्दर्भ समाप्त।

—त्रिदंडिस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिभूदेव श्रौती महाराज।

रे मन, जन्म सफल करि लीजै—

नर तन पाय भजन करि लीजै।
ज्यों ज्यों बीतत रैन दिवस, अति सुन्दर अवसर छीजै।।
कोई नहीं है सगा सनेही, मतलब सो सब रीझै।
लाख चौरासी घुमत घुमत, तब नर तन प्रभु दीजै।।
चूक न जइयो अबकी बार, हरि चरनन चित्त लीजै।
माया का वैभव माया में, संग श्याम धन रहिजै।।
मातु पिता सुत सुता सुनारी, सब पीछे हट जहिजै।
काल गरे में फाँस डारि है सुध ले ले पछितहिजै।।
भजन बिनु गति न होई, कृष्ण भजन करि लीजै।
'सत्य' साधु संगतमें रहिके, जन्म सफल करि लीजै।।

श्रीसत्यपाल गोयल, एम० ए०

परमाराध्यतम श्री श्रील गुरुदेवकी पावन आविर्भाव-तिथि पर

दीन-हीन का हृदयोद्गार

पावन स्मृतिका मधु लेकर,
आयी अनुपम फागुन तृतीया।
जिसमें केशवने प्रकट हो,
जगको भक्तिका ज्ञान दिया ॥१॥

अज्ञान तिमिरमें फँसे हुए,
मायाके बंधनमें जकड़े।
सुखका मार्ग पानेको जो,
लालायित प्राणी तरस रहे ॥२॥

विषय-तृष्णाके वश होकर,
भूल सच्चे सुखका सागर।
उनके कल्याण निमित्त केशव,
लाये थे भक्ति-ज्ञान गागर ॥३॥

दोनों हाथोंसे लुटा गये,
वे उत्तम रस पावन भक्तिका।
जीवोंमें संचार किया था,
कृष्ण भक्ति और प्रेम शक्तिका ॥४॥

कुछ वर्ष हुए मैं भटक रहा,
जगके विषयोंके मध्य अहो।
पहुँचा उनके आश्रममें मैं,
उनने मुझसे कहा—'कृष्ण कहो' ॥५॥

कृष्ण गति हैं, कृष्ण मति हैं,
कृष्ण विश्वके अनुपम सार।
वही सभी प्राणीके आश्रय,
टिका हुआ उनसे संसार ॥६॥

पाकर चरणोंका आश्रय मैं,
भक्ति पथ पर आरूढ़ हुआ।
उनकी ही पावन महिमाने,
मेरा जगसे उद्धार किया ॥७॥

फिर भी लेकर मैं अहंभाव,
जगमें ही रत रहा सुनो।
विषय दशामें फँसा हुआ मैं,
भोग रहा सब कष्ट सुनो ॥८॥

सबने मेरा साथ छोड़कर,
स्वारथका प्रमाण दिया है।
कुछ दिनोंका झूठा प्यार दिखा,
सबने नाता तोड़ दिया है ॥९॥

आज दीनकी सुनो प्रार्थना,
हे केशव ! मेरे गुरुवर तुम।
तो मेरा अनुराग कृष्णमें,
भक्त जनोंके चरणों में नम ॥१०॥

भाषा भाव भक्ति नहीं मुझमें,
है मेरी वृत्ति कुछ कृपण।
हृदयके कुछ पुष्प चरणमें,
करता हूँ गुरुवर मैं अर्पण ॥११॥

अपनाकर इनको अंतर से,
कृष्ण भक्तिका दे दो दान।
मुझे विश्वमें नहीं दीखता,
तुमसे गुरुवर दयानिधान ॥१२॥

विषय भोग जगकी दुर्लिप्सा,
और यहाँका मृषा प्यार।
आसक्ति इनमें जो मेरी,
कर दे नाश तव कृपा-कटार ॥१३॥

जब जब हो तृतीयाका आवन,
रहे स्मृति सदा तुम्हारी।
सभी ओर से मुक्त रहूँ मैं,
अरु प्रीति हो चरण तुम्हारी ॥१४॥

आप सत्य हैं, सत्य कृष्ण हैं,
सत्य भक्ति और कृपा श्यामकी।
रहे प्रीति 'सत्य' की उनमें,
रटन रहे नित सत्य नाम की ॥१५॥

चरणरेणुकण प्रार्थी
सत्यपाल गोयल, एम. ए.

परमाराध्यतम श्री श्रील गुरुदेव के आविर्भावोत्सव पर

दीन-हीन की श्रद्धा-कुसुमांजलि

मूकं करोति वाचालं पंगुं लंघयते गिरिम्।
यत्कृपा तमहं वन्दे श्रीगुरुं दीनतारिणम् ॥

अद्वयज्ञान तत्त्व स्वयं भगवान नन्दनन्दन श्रीकृष्ण ही एकमात्र परतत्व या सेव्य-तत्त्व हैं। उनको छोड़कर सभी वस्तुएँ ही सेवक तत्त्व या शक्ति तत्त्व हैं। स्वयंरूप श्रीकृष्णके आदि कायव्यूह श्रीबलदेवजी हैं। वे असंख्य मूर्त्ति धारण कर श्रीकृष्णकी सेवा करते हैं। वे श्रीगुरुरूपसे इस जगतमें प्रकटित होकर मायाबद्ध जीवोंको अक्षरब्रह्मरूप वेद और परब्रह्म स्वयंरूप श्रीकृष्ण तत्त्वकी सेवा-शिक्षा देते हैं। श्रीगुरुदेव बलदेवजीके प्रकाश-स्वरूप हैं। श्रीगुरु तत्त्व नित्य हैं।

श्रीव्यासदेवजी जगद्गुरु कहे जाते हैं। श्रीश्रीव्यासाभिन्न स्वयं भगवान कलियुग पावनावतारी श्रीश्रीचैतन्य महाप्रभुजीने

श्री श्रीवास-अङ्गनमें आदि-गुरु बलदेवाभिन्न श्री श्रीनित्यानन्दप्रभु द्वारा श्रीव्यास-पूजा करवानी थी। इसके द्वारा श्री श्रीनित्यानन्द प्रभुजी गुरु-तत्त्व हैं, यह श्रीमन्महाप्रभुजी ने शिक्षा दी। श्रील गुरुदेवका तत्त्व बड़ा ही निगूढ़ है। केवल भगवानकी कृपासे ही गुरु तत्त्वको जाना जाता है।

भगवान स्वयं अपनी आत्मा, अपनी नित्य प्रिया लक्ष्मीजीसे भी उतना प्रेम नहीं रखते जितना भक्तोंसे। गुरुदेव भक्तश्रेष्ठ होनेके कारण भगवानके अत्यन्त प्यारे हैं। वे केवल भगवानकी ही सेवा या प्रीति-विधान करते हैं। भगवान उनके प्रेम द्वारा वशीभूत हैं। श्रीगुरुदेव महाभागवत-प्रधान और भगवानके अभिन्नविग्रह हैं। वें स्वयं भगवान नहीं, बल्कि उनके प्रियतम होनेके कारण अभिन्न हैं। वे आश्रय-तत्त्व या भक्त-भगवान हैं। श्रील गुरुदेव स्वयं भोक्ता ईश्वर नहीं, बल्कि उनके सेवक-प्रधान या शक्ति-तत्त्व हैं। वे सर्वदा ही भगवानकी सेवा करते हैं। उनकी सभी क्रियाएँ भगवानकी सेवाके लिए ही करते हैं। जगतमें शिष्यके धनादि हरण करनेवाले बहुत गुरु हैं, किन्तु शिष्यके संतापको दूर करनेवाले सद्गुरु दुर्लभ हैं। पूर्वजन्मोंका बहुत-सुकृतिसे और बड़े सौभाग्यसे सद्गुरुका चरणाश्रय प्राप्त होता है। एकमात्र गुरु-कृपा ही संसार-सागरसे उत्तीर्ण होनेका एकमात्र उपाय है।

हे गुरुदेव! आपकी महिमा अपार है। इसे मुझ जैसा क्षुद्र व्यक्ति कैसे कह सकता है? मैं अज्ञान मोहसे भरा, अत्यन्त दीन-हीन हूँ। आज आपका परम शुभ आविर्भाव-तिथि है। आपके श्रीचरणकमलोंकी कैसी पूजा करूँ? आपकी श्रीमुख-विगलित वाणीको पुनरावृत्ति करके ही आपके श्रीचरणकमलों में अपनी क्षुद्र श्रद्धांजलि अर्पण कर रहा हूँ। हे दयामय देव! आप इसे कृपा कर अङ्गीकार करें।

ॐ विष्णुपाद १०८ श्रीश्रीमद् केशव गोस्वामी महाराजकी जय हो! जय हो! जय हो!

भवदीय श्रीचरणकमलरेणु प्रार्थी

दीन हीन मुरलीमोहन

भक्तोंका लोकापेक्षा-त्याग

परिवदतु जना यथा तथायं न वयं मुखरो न विचारयामः ।
हरिरसमदादिमत्ता भुवि विलुठाम नटाम निर्विशाम च ॥

भक्त-शिरोमणि श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यजी कहते हैं—जगतके हरि-विमुख व्यक्ति हमारे सम्बन्धमें जैसे तैसे कहते हैं, तो कहा करें। उस बातकी हम लोग न चिन्ता करेंगे, और न अपनी भक्ति-साधनासे विमुख ही होंगे। हम तो भगवान नन्दनन्दन श्रीकृष्णके प्रेमरसरूपी मदिरासे अत्यन्त मदमत्त होकर पृथ्वीमें लोट-पोट करेंगे, नृत्य करेंगे और मूर्च्छित हो जायेंगे।

श्रीभागवत-पत्रिकाके सम्बन्धमें विवरण

(१) प्रकाशनका स्थान—श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरा।

(२) प्रकाशनकी अवधि—मासिक।

(३) मुद्रकका नामक—श्रीहेमेन्द्रकुमार।
राष्ट्रगत सम्बन्ध—हिन्दू (भारतीय)।
पता—साधन प्रेस, डैम्पियर नगर, मथुरा।

(४) प्रकाशकका नाम—श्रीकुञ्जबिहारी ब्रह्मचारी
राष्ट्रगत सम्बन्ध—हिन्दू (गौड़ीय वैष्णव)।
पता—श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरा।

(५) सम्पादकका नाम—त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्ति वेदान्त नारायण महाराज।
राष्ट्रगत-सम्बन्ध—हिन्दू (गौड़ीय वैष्णव)।
पता—श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ मथुरा।

(६) पत्रिकाका स्वत्वाधिकारी—श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके तरफसे उसके प्रतिष्ठाता और नियामक परमहंस स्वामी श्रीमद्भक्ति प्रज्ञान केशव महाराज।

समिति नरेजिस्टर्ड।

मैं कुञ्जबिहारी ब्रह्मचारी, इसके द्वारा घोषित करता हूँ कि ऊपर लिखी बातें मेरी जानकारीमें और विश्वासके अनुसार सत्य हैं।

— कुञ्जबिहारी ब्रह्मचारी